Research Guru
Online Journal of Multidisciplinary Subjects (ISSN : 2349-266X)
Volume-13, Issue-1, June 2019
Impact Factor: 4.081
www.researchguru.net

''वेदों में निर्दिष्ट ओषधियाँ एवं औषधीय तत्त्व''

Dr.Hema Solanki

कुर्वन्नेवेह कर्माणि
जिजीविषेष्छतं समाः।

इस संसास में कर्म करते हुआ सो वर्ष पर्यन्त जीने की इच्छा कर।[१] संसार में जन्मे हर मनुष्य को वेद इस तरह कर्म करते हुए सो वर्ष स्वस्थ रह कर आयुष्य भोगने की प्रेरणा देते हैं। मनुष्य भी परमात्मा से अदीन होकर आयुष्य भोगने के लिए प्रार्थना करता है।[२]

अदीनाः श्याम शरदः शतं।
भूयस्व शरदः शतात्।।

किन्तु इस आयु में निरोगी रहकर स्वस्थता पूर्वक जीवन बिताना अति आवश्यक है। इसके लिए जरुरी है योग्य आहार-विहार। मनुष्य अयोग्य आहार से अपने शरीर को रोगो से आक्रान्त करता है। इस लिए योग्य चिकित्साकी आवश्यकता है। हमारे देश में अनेक चिकित्सा पद्धति उपलब्ध है। परन्तु इस में आयुर्वेद को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। इसका निरुपण हमारे वेदों में किया गया है। आयुर्वेद के शास्त्रकार चरक, सुश्रुत, एवं वागभट्ट आदि वृद्धत्रयि की भी यही मान्यता है।

शरीर और मन के विविध रोग और उनसे मुक्त होने के विविध उपायों में विविध ओषधियाँ एवं औषधीय तत्त्वों का विस्तृत निरुपण आयुर्वेद स्वरुप अथर्ववेद में है। इस बात का समर्थन करते हुए महर्षि चरक कहते है, **''तत्र भिषजा पृष्टेनैवश्चतुर्णामृक्सामयजुरथर्ववेदानां आत्मकांड अथर्ववेदे भक्तिरादेश्या। वेदो ह्याथर्वणः स्वस्त्ययनबलिमंगलहोमनियमप्रायश्चितोपवासमन्त्रादि परिग्रहाच्चिकित्सां प्राह।''** ऋग्, यजु, साम और अथर्व- इन चारों वेदों में अथर्ववेद में आयुर्वेद का उपदेश है, क्योंकि अथर्ववेद में ही स्वस्त्ययन, बलि, मंगल, होम, निमय, प्रायश्चित, उपवास और मन्त्र आदि परिग्रह द्वारा चिकित्सा का उपदेश दिया गया है।''[३] सुश्रुत भी इस बात का सर्मन करते है।

इह स्वल्पायुर्वेदो नाम यदुपाङ्गमथर्ववेदस्य।[४]

वेदों में स्वास्थोपयोगी अनेक उपायों के साथ विविध ओषधियाँ एवं औषधीय तत्त्वों के असंख्य उल्लेख किये गये हैं। उनमें प्राकृतिक, खनिज, समुद्रज, प्राणिज तथा उद्भिज आदि द्रव्यों का समावेश है। प्राकृतिकों में सूर्य, चन्द्र, अग्नि, मरुत, जल आदि समाविष्ट है। चरक सूत्रस्थान में इनका उल्लेख करते हुए कहते हैं:

विसर्गाय विक्षेपैः सोम सूर्यानिला यथा।
धारयन्ति जगद् देहं फलपित्तानिला तथा।।

''जैसे वायु प्रेरणा- गति देने, सूर्य रसका प्रदान करने और सोम विसर्जन करने के द्वारा जगत को धारण करते है, वैसे ही वात्,पित् व कफ शरीर को धारण करते है।''[५] ऐसे ही खनिज द्रव्यों में आंजन, सीसा आदि, समुद्रज में शंख, प्राणिजो में मृगश्रृंग और उद्भिजो में अनेक विरुधों (ओषधियों) का वर्णन प्राप्त होता है। इन सभी तत्त्वों में से कूछ तत्त्वों का निर्देश करने का यहाँ उपक्रम है।

वेदों में विशेषतः ऋग्वेद और अथर्ववेद में इन तत्त्वों का विस्तृत वर्णन है। इन में से उद्भिज- ओषधियों का, उनके गुणधर्मो एवं उनके द्वारा रोग निवारण के उपायों को दर्शाया गया है। 'विरुध', 'भेषजी' एवं 'वनस्पति' आदि संज्ञाओं से संबोधित ओषधियाँ को रोग निवृत्ति के लिए प्रार्थना की गई है।

---

[१] यजुर्वेद, ४०/२

[२] यजुर्वेद, ३६ /२४

[३] चरकसंहिता-सूत्रस्थान- अध्याय-३०

[४] सुश्रुतसंहिता-शरीरस्थान-अध्याय-६

[५] सुश्रुतसंहिता-सूत्रस्थान-२१-६

सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हषिषाहार्षमेनम्।

इन्द्रौ यथैनं शरदो नायात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम्।।

अर्थात् " सहस्राक्ष, शतवीर्य, शतायुष इन औषधियों से युक्त हवि द्वारा मैने इस को (आत्मा को) उभारा है। जिससे इन्द्र इसे (आत्मा को) समग्र अनिष्टो से पार कर सौ शरद तक सुरक्षित करें।"[६]

शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताव्छ्तमु वसन्तात्।

शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम्।।

ऋषिने यहाँ इन्द्र, अग्नि, सविता, बृहस्पति आदि द्वारा विकास करते हुए मनुष्य को श्रेष्ठ आयुष्य प्राप्त होने की कामना की है।[७]

निरुक्तकारने ओषधियों का महत्त्व समजाते हुए कहा, ओषधियाँ मनुष्य के शरीर और मन के रोगों को दूर कर तरोताजा बनाती है। वह 'पुनर्नवा" शक्ति दायीनी भी है। यास्क उसका अर्थ समजाते है।

'ओषधयः ओषद् धयन्ति इति वा। ओषति एना धयन्ति इति वा। दोषं धयन्ति-इति वा। तासाम् एषा भवति।।'

अर्थात् " जो कुछ शरीर में क्षय आदि रोग हैं, उसे सेवन की हुई यह नाश कर देती है। या पानकर जाती है। अथवा 'ओषति एना धयन्ति' किसी अङ्ग को रोगी होने पर प्राणी इन्हे पान करते है।"[८]

भाव प्रकाश में ओषधिकी परिभाषा इस तरह है।

वैद्यो व्याधिं हरेद्येन तद्द्रव्यं प्रोक्तमौषधम्।

वैद्यं जिस द्रय से व्याधि दूर करता है, उसी को औषध कहते हैं।[९]

औषधय एवौषधानि। अन्न स्वार्थे अण् अर्थात् 'अन्न स्वार्थे अण्' सूत्र से औषध से ही औषधियाँ शब्द सिद्ध होता है।[१०]

ऋग्वेद मंडल १० के सूक्त ९७ में २३ मंत्रोमें एवम् अथर्ववेद के अष्टमकाण्ड के सूक्त-७ में २८ मंत्रो में वर्णित 'औषधि सूक्त' में औषधियों का विशेष निरुपण प्राप्त है।

अथर्ववेद में विविध गुणों से युक्त इनकों मनुष्य का शुभ करने के लिए आह्वान किया गया है।

जीवलां नघारिषं जीवन्तीमोषधीमहम्।

त्रायमाणां सहमानां सहस्वतीमिह हुवे स्मा अरिष्टतातये।।

"जीवन देने वाली, कभी हानि न करने वाली, जीव आरोपित करने वाली, बल वाली, रक्षाकरने वाली, (रोग को) मीटा देने वाली ओषधि को यहाँ (आत्मा में) इस (पुरुष) का शुभ करने के लिए बुलाता हूं।"[११]

ऋग्वेद में ऋषि भिषग् ने देवताओं से भी पूर्व इनकी उत्तपत्ति बताई है।

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा।

मनै नु बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च।।

"जो देवों से पूर्व (अर्थात् उनकी) तीन युग के पहले उत्पन्न हुई। उन पुरातन ओषधियों के एक सौ सात सामर्थ्यो का में मनन करता हूं।[१२]

---

[६] अथर्ववेद,३/१५/३

[७] अथर्ववेद,३/११/४

[८] निरुक्त, ९/६/२७

[९] भावप्रकाश, ६/९०

[१०] भावप्रकाश, ६/९३

[११] अथर्ववेद, ८/३/६

[१२] ऋग्वेद, १०/९७/१

अथर्ववेद में विशेषतः ओषधियोंकी उत्पत्ति, रसायन् तैयार करने की पद्धति, रंग-भेद, आकार-स्वरूप भेद, गुण-भेद, उत्तपत्ति स्थान, उसके उपयोग आदि का ज्ञान उपलब्ध है। आषधियों के पिता सूर्य, उसकी पालक पृथिवी उसे उत्पन्न करने वाली माता और समुद्र यानि की जल उसका मूल माना है।[१३]

ओषधियोँ का उत्पत्ति स्थन दर्शाते हुए ऋषि कहते है,

या रोहन्त्याङ्गिरसीः पर्वतेषु समेषु च।

ता नः पयस्वतीः शिवा ओषधीः सन्तु शं हृदे॥

ऋषियों द्वारा बतलाई गई, पर्वतों पर और चौरस ठोरों में उगती है। वे दूधवाली, कल्याणी, औषधियाँ हमारे हृदय के लिए शान्तिदायक (कल्याणकारी) होवें।[१४]

भावप्रकाश में इस विषय में संकेत् किये है।

आग्नेया विन्ध्यशैलाद्याः सोम्यो हिमगिरिः स्मृतः।

अतस्तदौषधानि स्युरनुरूपाणि हेतुभिः॥

विन्ध्याचल आदि पर्वत 'आग्नेय' है। और हिमालय पर्वत सौम्य है। अतएव विन्ध्याचलादि पर्वतो पर उत्पन्न हुई ओषधियाँ भी अपने उत्पन्न होने के हेतुओं के अनुरूप ही आग्नेयादि गुण विशिष्ट होती है।[१५] इससे अतिरिक्त अन्य स्थान वन और उपवनों में भी ओषधियाँ उत्पन्न होती है।[१६] इन सभी स्थानों में उत्पन्न ओषधियोँ को प्रसन्न चित्त और पवित्र हो कर शुभदिनों में, प्रातः काल, सूर्य की और मुख किये हुए मौन होकर ग्रहण करनां चाहिए[१७] ऐसे उल्लेख भी है।

कौन से स्थान में उगी ओषधियाँ योग्य नहि उसका भी निरुपण यहाँ किया गया है।

वाल्मीककुत्सितानूपश्मशानोषरमार्गजाः।

जन्तुवह्निहिमव्याप्ता नौषध्यः कार्यसाधिकाः॥

जो ओषधियाँ वल्मीक, अशुद्ध स्थान, अनूप (प्रायः करके जलयुक्त) देश स्मशान, उसरभूमि आदि स्थानों में उत्पन्न हुई हो तथा जो जीवों से भुक्त, या अग्नि से अथवा बर्फ से झुलस गई हो ऐसी ओषधियाँ कार्य सिद्ध करने वाली नहीं होती। अर्थात् इन सें रोग दूर नहीं होते।[१८]

अथर्ववेद में ओषधियों की पहचान कैसे होती है। और कौन सी ओषधियोँ को भेषज् योग्य मानते है इसका निर्देश इस तरह है।

वराहों वेद वीरुधं नकुलो वेदं भेषजीम्।

सर्पा गन्धर्वा या विदुस्ता अस्मा अवसे हुवे॥

सूअर, नेवला, गन्धर्व (क्रुमि) और सर्प इनकों जानते है।[१९]

वराह (जंगली सूअर) बहुत बलवान होता है। वह धरती खोदकर कन्द खाता है। नेवला सर्प से लडता है, पर उसे विष नही चढता। वह किन्ही विषनाशक ओषधियोँ का सेवन करता है। इसी प्रकार बिलों में रहने वाले दीर्घजीवी जन्तु, गरुड आदि उडान भरने वाले पक्षी, चिडिया, हंस, मृग अथवा जंगली पक्षी कुछ विशेष ओषधियोँ को जानते है। उपरांत गौवें और भेड-बकरीयाँ जीनका चारा करती है वही पुष्ट की हुई ओषधियोँ का उपयोग भेषज् रोगी का रोग दूर करने के लिए करते है।[२०]

ओषधियोँ के रंग-भेद का वर्णन भी कुछ इस तरह है।

---

[१३] अथर्ववेद, ८/७/२

[१४] अथर्ववेद, ८/७/१७

[१५] भावप्रकाश, प्रकरण-६/९३

[१६] भावप्रकाश, ६/९४ अ

[१७] भावप्रकाश, ६/९४-ब, ९५

[१८] भावप्रकाश, ६/९६

[१९] अथर्ववेद, ८/७/२३

[२०] अथर्ववेद, ८/७/२४-२५

या बभ्रवो याश्च शुक्ला रोहिणी रुत पृश्णयः।

असिक्नीः कृष्णा ओषधीः सर्वां अच्छावमसि।।

जो भूरी, श्वेत, लाल, चितकबरी, नीली व काली ओषधियों को हम अच्छे प्रकार से चाहते है।[२१]

ओषधियोँ के स्वरूप एवं आकार भेद का वर्णन इस तरह प्राप्त है।

प्रस्तुणती स्तम्बिनीरेकशृङ्ग प्रतन्वतीरोषधीरा वदामि। अंशुमतीः काण्डिनीर्या विशाखा दयामि ते वीरुधां वैश्वदेवीरुग्राः पुरुषजीवनी।।

बहुत पत्तों वाली, बहुत गुच्छों वाली, एक कौंपल वाली, बहुत फैली हुई, बहुत कौंपल वाली, बडे गुद्दो तथा कन्दली वाली ओंषधियों का वर्णन विद्यमान है।[२२] मन्त्र १२,१३,१६ और २७ में स्वरूप भेद से वृक्ष, पौधें, तृण, लत्ता, फूलवाली, फलवाली, पत्तोंवाली तथा कन्दलीवाली ओषधियोँ का वर्णन मिलता है।

विविध गुणों से युक्त वह इस तरह दर्शाई गई है।

आंगिरसीः, आभृताः, उदकात्मानः, उन्मुश्चन्तीः, कृत्यादूषणीः, पुरुषजीवनीः, पुष्पिणीः, बलासनाशनीः, भेषजीः, मधुमती, रक्षणी, मर्मभरणी, उन्नयती, पोषणी, स्नेहनी, विषदूषणी, विषनाशिका, आदि विशेषण इस सूक्त में प्राप्त है।[२३]

अथर्ववेद में ऐसी कम से कम ११० ओधियों के नाम प्राप्त है। इन में से कुछ महत्त्वपूर्ण ओषधियोँ का निर्देश यहाँ प्रस्तुत है।

अज्ञश्रृङ्गीः

अजश्रृङ्गी ओषधि का वर्णन सिर्फ अथर्ववेद के चौथे सूक्त में है अन्यत्र नही। इसे मेषश्रृङ्गी, सर्पदृष्टा, वर्तिका आदि भी कहाँ गया है।

इसका वैज्ञानिक नाम Odina Pinnata है। इसे प्रार्थना करते हुए ऋषि कहते है।

त्वया व्यमप्सरो गन्धर्वांश्चातयामहे।

अजश्रृङ्गयज रक्षः सर्वान् गन्धेन नाशय।।

हे अजश्रृङ्गि। तेरे से हम अप्सरस् और गन्धर्व क्रिमियों का नाश करते हैं। राक्षस क्रिमियों को भगा अपनी व्याप्ति से (तुं) सब को नष्ट कर।[२४]

गन्धर्व (गायक क्रिमि- मच्छर आदि), अप्सरस (जलकी और गति करने वाले) पिशाच (कच्चे मांस को खाने वाले) एवं राक्षस क्रिमि नष्ट होते है। ऐसा यहाँ निरुपण है।

मजुमदार "Vedic Plants' में इस इसका निर्देश करते है। "It is found in the hotter plants of India from extereme N.W. along the foot of the Himalaya, ascending to 4000 ft.[२५]

अपराजिताः

अथर्ववेद के २०/२०/६ (पिप्लाद संहिता) में इसे ताप को पीने वाली ओषधि कहा है।[२६] अर्थात ज्वरादि रोगो को नाश करने वाली ओषधि।

इसे गिरिकिर्णिका, विष्णुक्रान्ता (अपराजिता) योनिपुष्पा आदि अन्य संज्ञाये प्राप्त है। गुजराती में इसे 'कोयल' या 'गरणी' नाम से जाना जाता है।[२७] लेटिन नाम (Clitoria ternatea) (क्लीटोरीआ टरनेटीया) भावप्रकाश में नाम और गुणों का उल्लेख इस तरह प्राप्त है।

---

[२१] अथर्ववेद, ८/७/१

[२२] अथर्ववेद, ८/७/४

[२३] अथर्ववेद, ८/१२,१३,१६,२७

[२४] अथर्ववेद, ४/३७/२

[२५] Majmudar, G.P. Vedic Plants, Page-६४६

[२६] अथर्ववेद, (पिप्लाद. सं) २०/२०/६

[२७] निघण्टु, (बापालाल वैद्य)-३७२

अथश्वेतपुष्पा नीलपुष्पा चापराजिता (कोयल) तर्योनामानि गुणांश्चा।

सफेद तथा नीले फूलवाली कोयल के नाम तथा गुणः

अपराजिते कटू मेध्ये शीते कंठय सुदृष्टिदे।
कुष्ठशूलत्रिदोषामशोपव्रणविषापहे।
कषाये कटुके पाके तिक्ते च स्मृतिबुद्धियुद्धे।।

अपराजिता कटु, तिक्त तथा कषायरसयुक्त, मेधा के लिए हितकर, शीतवीर्य, कण्ठ स्वर को उत्तम बनाने वाली, देखने की शक्तिको बढाने वाली तथा कुष्ठ, मूत्ररोग, त्रिदोष, आम, विष को नष्ट करने वाली; कटुरसयुक्त, स्मृति तथा बुद्धि देने वाली है।[२८]

गुण और प्रयोगः-

- दर्वीकर सर्प के विष में श्वेत अपराजिता की जड को घीसकर पीलाए[२९]
- बच्चों के कास-श्वास में बीजो को सेंक थोडा गुड एवं सैंधव मिलाकर पिलाने से दस्त के साथ कफ निकल जाता है।
- कानों के चारों तरफ सूजन होकर ग्रन्थियों की वृद्धि होने पर पत्तों को सैधंव के साथ पीसकर लगाए।

अपामार्गः

अपामार्ग छोटे पौधे के रूप में उगने वाली औषधि है। १ से तीन फूट उंचे पोधे वाली, पतली शाखा, अंडाकार पत्र वाली उसके पुष्प कंटकीय एवं सफेद तथा लाल पोंध वाली होती है। अपामार्ग, शिखरी, प्रत्यक्पुष्पी, अधःशाल्या, खरमंजरी, मयूरक, मर्कटी, आदि संज्ञाये है। गुजराती में 'अघेडो' कहा जाता है। लेटिन नाम Achyranthus aspera(एकीरेन्थस एस्पेरा) है।

अथर्ववेद एवं यजुर्वेद में इसका निर्देश है।

अपाधमप किलिवषमय कृत्यामपो रपः।
अपामार्ग त्वमस्मदप दुःष्वप्न्यं सुख।।

हे अपामार्ग ओषधि जैसे रोगों को दूर करती है वैसे पापों को दूर करने वाले सज्जन पुरुष। आप हमारे निकट से पाप को दूर कीजिये, मन की मिलनता, दुष्ट क्रिया, बाह्य इन्द्रियों की चञ्चलता, दुःस्वप्न्य दूर किजिए।[३०]

अथर्ववेद चतुर्थकाण्ड के सूक्त १७,१८ एवं सप्तम्काण्ड के सूक्त-६५ में इसके उल्लेख है।

- अपमार्ग को यहाँ भेषजों का ईश माना है। इशानां त्वां भेषजानाम्।[३१] सत्यजित, सहमाना, शपथयावनीं, पुनः सरा आदि गुणों का निरुपण है।[३२]
- अपामार्ग कृत्वा, दौष्वप्न्य, दौर्जीवित्य, दुर्णाम्नी आदि राक्षस क्रिमि को[३३] एवं क्षुधामार, तृष्णामार, अगाता, अनपत्या[३४] आदि पापों को दूर करती है।

उपयोग

- अपामार्ग के बीज शीरोविरेचन में श्रेष्ठ है।
- इस के मूल को चावल के द्रावण के साथ लेने से 'अर्श' (हरस) दूर होते है।
- आँख की फूली में इस के मूल को चूर्ण में मधु मिलाकर आँख में डालने से लाभ होता है।

आंजन

---

[२८] भावप्रकाश, निघण्टु भाग-१११/११२

[२९] चरकसंहिता, चि.अ. २५

[३०] यजुर्वेद, ३५/११

[३१] अथर्ववेद, ४/१७/१

[३२] अथर्ववेद, ४/१७/२

[३३] अथर्ववेद, ४/१७/५

[३४] अथर्ववेद, ४/१७/६

अथर्ववेद में अंजन के लिए आंजन शब्द प्रयुक्त है। त्रिकुद् पर्वत पर उत्पन्न होने के कारण उसे त्रैककूद् और यामुन भी कहा गया है।[३५]

यदि वासि त्रैककुदं यदि यामुनमुच्यसे।

उभे ते भद्रे नाम्नीं ताभ्यां नः पाह्याञ्जन।।

भावप्रकाश इसके अञ्जन, यामुन तथा कपोताञ्जन ऐसे तीन नाम दर्शाता है। अञ्जन में जो काला होता है (सुरमा) उसे संस्कृत में स्रोतोऽञ्जनं कहते है। और सफेद होता है उसे 'सौवीर' कहते है।[३६]

- कृष्ण अञ्जन- स्वादिष्ट, कषाय, रसयुक्त, नेत्रों के लिए हितकर, लेखन, स्निग्ध, शीतल होता है।
- कफ, पित्त, वमन, विष, क्षय तथा रक्त विकारको दूर करना है।[३७]
- अथर्ववेद में इसकी महिमा एवं उपयोग का वर्णन है।

परिपाणां पुरुषाणां गवामसि।

अश्वानामर्वतां परिपाणय तस्थिधे।।

यह पुरुष, गौओं एवं अश्व के लिए लाभ कारी है।[३८] इस के सेवन से आयु बढती है।[३९] शपथ (कोध), कृत्या (हिंसा क्रिया) अभिशोचन (महाशोक), विष्कन्धम् (विघ्न)[४०] दुःस्वप्नयात्, दुष्कृतात्, शमलात् (अशुद्धता)[४१] दूर होते है।

- नेत्र में आंजना, मणिरूप से शरीर पर बांधना, शरीर पर लेपन तथा भक्षण।[४२]

अरुन्धती

अथर्ववेद ६/५९ में अरुन्धती नाम के ओषधिका स्वतंत्र वर्णन प्राप्त है। यहाँ इस ओषधि को चतुष्पद पशुओं के लिए, विशेष कर बलीवर्द और गौओं के लिए लाभकारी बताया है। उनके रोगों को दूर कर गौओं का दूध बढाती है।[४३]

कुष्ठः (कूठ)

वैदिक काल में कुष्ठ का विशेष महत्त्व दर्शाया गया है। इसके 'देव' और उत्तम नामाभिधान किये है। वेद में प्रसिद्ध भिषक् इक्ष्वाक्त, काम्य, वस और आत्स्य आदि प्रसिद्ध आचार्य इसे जानते थे।[४४]

- काश्मीरज, वाप्य, कुष्ठम्, रुक्, अगद, पाकल, आदि अन्य नाम है। गुजराती में इसे 'कठ', 'उपलेट' कहते है।
- कुष्ठ ओषधि का उत्पत्ति स्थान वेद में हिमालय की चोटी पर उत्तर दिशा में माना गया है।[४५] जहाँ सुपर्ण पक्षी अपना घौंसला बना कर रहते है उतनी ऊँचाइ पर यह औषधि की उत्तपत्ति मानी गई है।[४६]

---

[३५] अथर्ववेद, ४/९/१०

[३६] भावप्रकाश, धात्वादिवर्ग, १३५

[३७] भावप्रकाश, धात्वादिवर्ग, १३७-१३९

[३८] अथर्ववेद, ४/९/२

[३९] अथर्ववेद, १९/४४/२

[४०] अथर्ववेद, ४/६/५

[४१] अथर्ववेद, ४/९/६

[४२] अथर्ववेद, १९/४५/५

[४३] अथर्ववेद, ६/५९/१-३

[४४] अथर्ववेद, १९/३९/९

[४५] अथर्ववेद, १९/३९/८

[४६] अथर्ववेद, ५/४/२

- सूक्त ५/४ में कुष्ट को तृतीय लोक हिमालय के शिखर पर 'अश्वत्थ' स्थान पर उत्पन्न हुई माना है।
- कुष्ठ, उष्णवीर्य, कटु, स्वादु तथा तिक्त रसयुक्त, शुक्रजनन माना है।[४७]
- इसके क्षुप काश्मीर तथा उसके आसपास के आर्द्र ढालों पर ८०००-१२००० फीट की ऊँचाइ पर पाये जाते हैं। भाव मिश्रने मीठा कूष्ठ और पुष्करमूल ऐसे दो भेद दर्शाये है।
- अथर्ववेद में इसका उपयोग ज्वर (तक्म) में और विशेष करके शिरो वेदना युक्त ज्वर के लिए कहा है।[४८] इसके अलावा शिर की पीडा, नेत्रदृष्टि की कमी, और त्वग् रोगों को दूर करने में भी हितकारक कहा है।[४९]

नव्यमतानुसार

- इसका प्रयोग शरीर के घाँव, और फोडे, फुन्सियों पर, बाल धोने के लिए करते हैं।
- कश्मीर की शॉल में भी इसे रखते है।
- उपके मूल का प्रयोग धूप के रूप में करते है।
- केश तैलों को सुगन्धित करने के लिए इसका व्यवहार है।

केशदृहणी

अथर्ववेद के षष्ठम् काण्ड में तीन सूक्तों में इस ओषधिका केशों को दृढ करने और बढाने के स्वरूप में उपयोग दर्शाया है।[५०]

दृह प्रत्नान् जययाजातान् जातानु वर्षीयसस्कृधि।। हे ओषधे। दृढ कर पुराने (केशों) को, उत्पन्न कर अजात (केशों को) और उत्पन्न हुओ को बढा।[५१] जो तेरे केश गिरते है अथवा समूल से कटते है। इस रोग में विश्वभेषजी विरुध का सिञ्चन करता हूँ।[५२]

इस केशवर्धनी ओषधि सें बालों को बढनें का क्रम भी दर्शाया है। अंगुलि जितने बाल व्याम (लम्बे दो हाथ) जीतने तथा तृण की भाँति कृष्णवर्ण वाले बढे और बालों के मूल, मध्य और अग्रभाग को दृढ बनाने की प्रार्थना की गई है।[५३]

जीवन्ती

जीवन्ती, शाकश्रेष्टा जैसे नाम वाली यह ओषधि को शाकविशेष कहा गया है। जीवन्ती गुजराती में 'डोडी' कहताली है। वैज्ञानिक नाम Leptadania raticulata (लेप्टेडेनीया रेटीक्युलेटा)

जीव्य ते अनया जनैः दीर्घकालं रसायनरूपत्वात्। जो रसायन स्वरूपा होने के कारण जीसके सेवन से मनुष्य लम्बी आयु भोगता है।[५४]

उपयोग

- विषदोष में इसकी सब्जी खानी हितावह माना है।
- इसके पान धृत में पकाकर खाने से रतोंधी में लाभ होता है।
- इसके मूल को घीस कर, तेल मीलाकर गरम कर घीसने से पार्श्वशूल मीटता है।
- ऋग्वेद में इसका उल्लेख दीर्घजीवन के अर्थ में प्राप्त है।

दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि।
नरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि।।

- बालक का निर्विघ्न जन्म हो, ऐसा दर्शाया गया है।[५५]

---

[४७] भावप्रकाशः हरीतक्यादिवर्ग, १७३

[48] अथर्ववेद, १९/३९/१०

[४९] अथर्ववेद, ५/४/१०

[५०] अथर्ववेद, ६/३१/२-३

[५१] अथर्ववेद, ६/१३६/२

[५२] अथर्ववेद, ६/१३६/३

[५३] अथर्ववेद, ६/१३७/१-३

[५४] निघण्टु, पृष्ठ-६९८

पाटा

पाटा नामक ओषधि का वर्णन अथर्ववेद और ऋग्वेद में 'पाठा' नाम से प्राप्त है। इस औषधि के सेवन से शरीर और वाणी की शक्ति बढती है। गरुड और शूकर ने इसे पहले ढूंढ निकाला था।[५६]

- इन्द्रने असुरों को जीतने के लिए इस ओषधिको खाया था।[५७]

ऋग्वेद में इसको पाठा सज्ञा से सम्बोधित किया है। उत्तान्पर्णे, सुभगे, देवश्रृति, सहस्वति आदि संज्ञा प्रचलित है। सायण इसे 'पाठा' संज्ञा देते है। **इमामोषधि पाठाख्यां, विरुधं लत्तारुपा** इसे 'सपत्निबाधा' के निवारण के लिए उपयोग करने का उल्लेख है।[५८]

पिप्पली

अथर्ववेद में ६/१०९ में पिप्पली का वर्णन तीन मंत्रो में प्राप्त होता है।[५९] क्षिप्त, अतिवृद्धि तथा वातीकृत रोगों को दूर करने की ओषधि है।

भावप्रकाश में इसे पिप्पली, मागधी, पीपर, अग्निदीपक, रसयुक्त, थोडी उष्ण, वात तथा कफनाशक, रेचक कहा है।[६०]

- कच्ची पीपर कफकारी, शीतल, मधुर, पित्त नाशक है।
- सुखी पीपर पित्त को कुपित करने वाली है।
- मधु से युक्त पीपर- कफ, श्वास, ज्वर का नाश करने वाली है।
- गुड से युक्त पीपर-जीर्णज्वर, अग्निमान्द्य में हितकर, अजीर्ण, अरुचि, श्वास, पाण्डु, रोग तथा कृमिको दूर करने वाली है।
- चरक ने भी रसायनाध्याय में इस के गुणों बताया है।

  इसे मधु मिश्रित खाने से क्षय, (Consupation) शोष, श्वास(Asthama), हिचकी, गलेका रोग, अर्श (Piles), पाण्डु, विषज्वर, शोक (Odema), आदि व्याधियों का नाश होता है।[६१]

पृश्निपर्णी

पृश्निपर्णी, पृथ्क्पर्णी, चित्रपर्णी, सिंहपृच्छी, धवनी, आदि संज्ञा से युक्त है। इसे गुजराती में 'पीढवण' कहा गया है।[६२]

- त्रिदोष को दूर करने वाली, दाह, श्वर, श्वास, रक्तातिसार, तृषा और वमन को दूर करती है।[६३]
- अथर्ववेद २/२५ में इसे कण्व और दुर्णाभ क्रिमि जो शरीर में घुस कर रुधिर का पान करते है, तथा गर्भ को हानि पहुँचाते है उनका नाश करने वाली कहाँ है।
- नेपाल, बंगाल, छोटानागपुर तथा अन्य उष्ण प्रान्तों में जंगली स्थानों में इसे पाया जाता है।

रोहणी

रोहणी, अरुन्धति, भद्रा नामसे प्रख्यात् इस ओषधि का वर्णन अथर्ववेद में अस्थिभंगादि के लिए किया गया है। अथर्ववेद सूक्त ४/१२ में इसका विस्तृत वर्णन पाया गया है।

---

[५५] ऋग्वेद, ५/७८/९

[५६] अथर्ववेद, २/२७/२

[५७] अथर्ववेद, २/२७/३

[५८] ऋग्वेद, १०/४५/१

[५९] अथर्ववेद, ६/१०९/१-३

[६०] भावप्रकाश, हरितक्यादिवर्ग-५३

[६१] चरकसंहिता, रसायनाध्याय-१/३/३२-३५

[६२] भावप्रकाश, गुडूच्यादिवर्ग-३४

[६३] भावप्रकाश, गुडूच्यादिवर्ग-३५

- इसे टूटी हुई अस्थिको जोडने वाली, उपरांत रिष्ट (चोट), द्युतं (मांस का अग्नि से जलाना) पैष्ट्र (पिसजाना), मज्जा, शिथिलमांस, चर्म, लोम, त्वचा को जोडने वाली, शस्त्र तथा पत्थर से लगने वाली चोट पर लगाने के लिए प्रयुक्त किया जाता है।[६४]

सहस्रपर्णी

सहस्रपर्णी का वर्णन अथर्ववेद सूक्त ६/१३९ में प्राप्त होता है। दौर्भाग्य को दूर करती हुई, सौभाग्य को बढानेवाली कहाँ गया है।[६५] यह ओषधि, नर-नारी में संभोगेच्छा वृद्धि के लिए प्रयुक्त की जाती है ऐसा भाव यहाँ प्रगट होता है।[६६]

सोमलत्ता

सोम का वर्णन वेद में अधिक पाया जाता है। इसे ओषधियोँ का राजा कहा है।[६७] ऋग्वेद में समग्र नवम् मण्डल-११४ सूक्त इस के लिए लिखे गए है। सोम पर्वत स्थानीय वनस्पति है। **श्रृंगे शिशाने अर्षति।**[६८] सुश्रुत ने चिकित्सास्थान में अध्याय-२३ में इसका विस्तृत वर्णन दिया है।

ब्रह्मादयोऽसृजन पूर्वमृतं सोमसंरितम्।
जरामृत्युविनाशाय विधानं तस्य वक्ष्यते।।

- पूर्वकाल में ब्रह्मा आदि ने बुढापा और मृत्यु को नष्ट करने के लिए सोम नामक अमृत का सृजन किया था। उसके सेवन का विधान बताया जाता है।[६९]
- स्थान, नाम, आकृति और वीर्यभेद से उसके चौबीस भेद बताये है।[७०]
- अग्नि, जल, विष, शस्त्र और अस्त्र भी सोम-सेवन करने वाले मनुष्य की आयुष्ट करने में समर्थ नहीं है।[७१] सोम का उत्तपत्ति स्थान हिमालय, अर्बुद, महेन्द्र, देवगिरि, विन्ध्यादि पर्वत है।सोमवल्ली पर पन्द्रह पत्ते होते है। शुक्ल पक्ष में प्रतिदिन एक एक पत्ता बढता है। कृष्ण पक्ष में एक एक पत्ता घटता है।
- सोमरस एक मादक पदार्थ है। अन्य मादक पदार्थो जैसे दोष उसमें नहीं है। सोम बल, वाग्शक्ति, स्फूर्ति और मन को आनन्द देने वाली ओषधि है।
- श्वास के आवेगों को रोकने के लिये सोम का सत्व उपयोगी है। और यह ह्रदय को उत्तेजना देता है।

वेदों में इन औषधियों के उपरान्त कई ऐसे औषधीय तत्व भी है जीन के द्वारा रोग निवारण किये जाने के उल्लेख है। इनमें, मणियों, भिन्न-भिन्न वृक्ष, शंख, लाक्षा, मृगशृंग एवं सूर्य, अग्नि, जल, वायु, विद्युत होम आदि द्वारा चिकित्साका विशद् वर्णन उपलब्ध है।

सीसं (नाग)

वैदिक काल में स्वर्ण, चान्दी, लोह, ताम्र, सीसक तथा त्रपु आदि धातुओं का प्रयोग रोग निवारण में होता था। **हिरण्यं च मेऽयश्च में श्यामं च लोहं च मे सीसं च मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।**[७२] औषधरूप से खाने में सीसक का ही प्रयोग मिलता है। वासुकि नामक नाग सें इसकी उत्पत्ति हुई है इसलिए इसे नाग भी कहते है।

सीसं ब्रध्नं च वप्रं च योगेष्टं नागनाकम्।[७३]

---

64 अथर्व-४/१२/१

६५ अथर्व-६/१३९/१

६६ अथर्व-६/१३९/२

६७ ऋग्वेद-१०/९७/१८

६८ ऋग्वेद-९/५/२

६९ सुश्रुतसंहिताः चिकित्सास्थान-२९/३

७० सुश्रुतसंहिता, चिकित्सास्थान- २९/३

७१ सुश्रुतसंहिता, चिकित्सास्थान-२९/१५

७२ यजुर्वेद, १/१६/१

– सीसा प्रमेह नाशक होता है। निरन्तर सेवन करने से सौ हाथी के समान बल देने वाला है। जठराग्नि को प्रदीप्त करता है। अथर्ववेद में इसे क्रिमिनाशक कहा गया है।

सीसे को वरुण ने आशीर्वाद दिया है, अग्नि रक्षा करता है। मुझे इन्द्रने दिया है। प्रिय रोगिन्। सिसा क्रमियों का नाशक है।[७४] इस तरह सिसा गौ, घोडे और पुरुष की हिंसा करने वाले क्रिमिका नाशक बताया गया है।

विषाणा (श्रृङ्ग)

विषाणा अर्थात् 'हरिणश्रृङ्ग' से भी चिकित्सा का निर्देश है। हृदय में शूल, कम्प या जलन होना हृद्रोग या हृदयरोग है। काण्ड-३ सूक्त-७ में इस रोग की चिकित्सा **'हरिणस्य विषाणया'** हरिण के सींग के द्वारा कियेजाने का विधान है। माता-पिता से प्राप्त या जन्म से आया क्षेत्रिय रोग होने पर मृगश्रृङ्ग द्वार चिकित्सा सम्भव है।

हरिणस्य रघुष्यदोऽधि शीर्षणि भेषजम्।
स क्षेत्रियं विषाणया विषूचीनमनीनशत्।।

हरिण जो शीघ्र चलता है। उसके शिर में (श्रृङ्गरूप) औषध है। वह हरिण (विषाणा) श्रृङ्ग से (क्षत्रिय रोग) शरीर वा वंश रोग को सब और से नष्ट कर दिया है।[७५]

इस मृगश्रृङ्ग का सेवन **"अपवासे नक्षत्राणामपवासे उषसामुत।"** प्रातः काली नक्षत्र के छुप जाने से लेकर उषाकाल की समाप्ति अर्थात् सूर्योदय तक करना अधिक उपयोगी माना गया है।[७६]

मणिधारण

भिन्न-भिन्न प्रकार के वृक्षों, वनस्पतियों और शैव आदि से गोलाकार बनाकर, मध्य में छिद्र कर (सूत) धागे में पिरोकर धारण करने वो पदार्थ को वेद में मणि कहा गया है। वेद में ऐसी नौ (०९) प्रकार की मणियों का वर्णन प्राप्त है। मनुष्य विविध लाभ, रक्षा के लिए मणि धारण किया करता। आज भी भारत वर्ष में गले में या भुजा पर मणि बांधने का व्यवहार है। जादु-टोना न होकर यह स्पर्श चिकित्सा का अंग है।

वेदों में अथर्ववेद में मणियों के प्रकार एवं लाभ इस प्रकार वर्णित है।

१. **अस्तृतमणि**[७७]

अस्तृत अर्थात् जिसे कोई उल्लंघन न कर शके। इस की वनस्पति का अभि कोई उल्लेख प्राप्त नहीं है। इसे धारण करने से कल्याण होता है, आयु की वृद्धि होती है।

२. **औदुम्बरमणि**[७८]

उदुम्बर की लकडी में से बनायी जाने वाली इस मणिकों सबसे श्रेष्ट माना है। इसे धारण करने से शरीर में पृष्टि, तेज बढता है और धन की प्राप्ति होती है। शत्रुका नाश होता है।

३. **जंगिडमणि**[७९]

इस वृक्ष का अभी पता नहीं। इस मणि को शण में पिरोकर बांधा जाये। इसे खाने का भी वर्णन है। यह सुमंगल, उग्र, ओजदायी, विश्वभेषज है। इससे शत्रु नष्ट होते है।

४. **प्रतिसरमणि**[८०]

---

[७३] भावप्रकाश, धात्वादिवर्गः ३४, ३५

[७४] अथर्ववेद, १/१६/२

[७५] अथर्ववेद, ३/७/१

[७६] अथर्ववेद, ३/७/७ अ

[७७] अथर्ववेद,१९/४६

[७८] अथर्ववेद,१९/३१

[७९] अथर्ववेद,२/४,१९/३४,१९/३५

[८०] अथर्ववेद,८/५

यह तिलक वृक्ष से बनती है। सहस्त्र वीर्य, शत्रुनाशक, ओजस्वती में उत्तम हैं।

५. **फालमणि**[८१]

खदिर काष्ठ से बनी इसे क्षत्र वर्धन, यज्ञ वर्धन, शत्रुनाशक, देवों से उत्पन्न हुई माना है। इसे प्रजा, पशु, अन्नकी वृद्धि करने वाली मानी है।

६. **वरणमणि**[८२]

यह शत्रुनाशक है। वरणवृक्ष से बनी है। कीर्ति, विभूति, तेज, यश देने वाली है।

७. **शतवार**[८३]

वर्तमान शतावर से मिलते वृक्ष से बनी इस मणि धारण करने से दुर्णामा और यातुधान नामक क्रिमि नष्ट होते है।

८. **शंखमणि**[८४]

समुद्र से निकले शंख को मणि के रुप में धारण करने का वर्णन है। यह सदान्व क्रिमि नाशक, आयु को बढाने वाली एवं अमति को नष्ट करने वाली है।

औषधियाँ एवं अन्य तत्वों के अतिरिक्त वेदों में सूर्य, अग्नि, जल, वायु, विद्युत, होम आदि प्राकृतिक तत्वों द्वारा चिकित्सा का सविस्तार वर्णन है।

सूर्यः

सूर्य विविध रोगों का निवारण करने के लिए श्रेष्ठ औषध है। वेद में सूर्य को विषेले दृष्ट एवं अदृष्ट क्रिमियों का नाशक कहा गया है। **उद्यन्नेष आदित्यः कृमीन् हन्ति।**[८५] सूर्यकी किरण हृदय रोग और हरिमा, पाण्डु (Jaundice) को दूर करती है।[८६] प्रातः सूर्य किरणों में रोगी को बिठाकर रुग्णा अंग को सीधे सूर्यकिरणों सें अथवा अन्य उपाय से सूर्यकिरण का स्नान करना चाहिए, इससे हृदयरोग, गण्डमाला, आदिका निवारण होता है।[८७]

अथर्ववेद काण्ड १ सूक्त-२२ में कहा है।

अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते।
गौ रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परिदध्मसि।।

" तेरे हृदय की सन्ताप और शरीर का पीलापन सूर्य के साथ-साथ उड जाये। निकलते हुए लाल रंग वाले (गोः) सूर्य के प्रसिद्ध रंग से तुझ को सब प्रकार से हम पुष्ट करते है।"[८८]

रोगनाश के लिए सूर्योदय समय के लाल (नारंगी) रंग वाले सूर्य के सम्मुख रोगी को बिठाना चाहिए।

अथर्ववेद के नवम् काण्ड के सूक्त-६ में समस्त शरीर की बिमारीयों को सूर्य किरणों से शान्त करने का स्पष्ट उल्लेख है।[८९]

जल तत्वः

सृष्टि के सभी प्राकृतिक पदार्थो में जल को एक महौषध माना गया है। वैदिक निघण्टु (१-१२) एवं अथर्ववेद में इसे अमृत कहा गया है। **अप्स्वन्तरमृतमप्सुं भेषजम्।** (अप्सु अन्तः) अमृतम्) (अप्सु) जल के बीच में रोग निवारक अमृत रस है और

---

[८१] अथर्ववेद,१०/६

[८२] अथर्ववेद, १०/३

[८३] अथर्ववेद, १९/३६

[८४] अथर्ववेद, ४/१०

[८५] अथर्ववेद,२/३२/१

[८६] ऋग्वेद, १/५०/११

[८७] अथर्ववेद, ६/८३/१

[८८] अथर्ववेद, १/२२/१

[८९] अथर्ववेद, ९/९/१-२२

जल में भय जीतने वाला औषध है।[९०] ऋग्वेद में कहा है की **शुचयः पावकास्ताआपः देवीरिह मामवन्तु।** दीप्तिमान्, शुद्ध और पवित्र जल शरीर की रक्षा करते हैं।[९१] नित्य आहार की वस्तु होने के साथ-साथ जल प्राकृतिक चिकित्सा का मुख्य साधन है। वेदों में विविध प्रकार के जल के उल्लेख है। इन सभी जल विविधयो शीतोष्णापान, स्पर्श, मार्जन, भाँप, मर्दन, धारापात् आदि रुपों में प्रयोग किये जाने पर अनेक दुःसाध्य रोग दूर होते है। जल चिकित्सा का वर्णन ऋग्वेद १/२३ में १०/९, एवं अथर्ववेद ६/२४ एवं ५७ में प्राप्त होते हैं। आंखो, एडियो व पंजो की जलन को शान्त करने में; रक्तस्त्राव को रोकने, जलन व शूल को दूर करने में जल उपयोगी है। काण्ड-१०, सूक्त-५ के २४ मंत्र में दुरित स्वप्नों को और मनिलनात को दूर करने की बात कही है।

भावमिश्र इस के गुणों का वर्णन करते है।

आम को दूर करने वाला, कलान्तिनाशक मूर्च्छा तथा प्यास को नष्ट करने वाला, तन्द्रा, वमन को हटाने वाला बलकारक, ह्रदय के लिए हितकारक, अजीर्ण का समन करने वाला कहा है।[९२]

होम यज्ञ

होम यज्ञ द्वारा रोग निवारण के उल्लेख है। यज्ञ में होनी गई गूगल आदि औषधि की उत्तम गन्ध से जिवाणुओं का नाश होता है। वातावरण शुद्ध होने से रोग की संभावना नही होती।[९३]

इस तरह वेदों में मनुष्य निरोगी बनकर सौ वर्ष तक आयुष्ट भोगे इस लिए और विविध रोगो की चिकित्सा के लिए विविद औषधियों और औषधीय तत्त्वों का विस्तृत वर्णन प्राप्त है। परन्तु इन पद्धतिओं के साथ मनुष्य के मनमें विश्वास एवं आस्था होनी भी आवश्यक है। और रोगी में स्वस्थ होने की श्रद्धा जगाने का यह कार्य चिकित्सक का है। रोगी-संपूर्ण श्रद्धा से युक्त होकर इन ओषधियों का एवं औषधीय तत्त्वों का प्रयोग करें तो अवश्य वह स्वस्थ होकर दीर्घायु भोग शकता है।

---

[९०] अथर्ववेद, १/४/४

[९१] ऋग्वेद, ७/४९/२

[९२] भावप्रकाशः वारिवर्ग-१

[९३] अथर्ववेद, १९/३८/१

संदर्भग्रन्थ

१. ऋग्वेदः, (हिन्दी भाष्य) महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत्, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नईदिल्ली, पुर्नमुद्रित, २०१०। (भाग-१-५)

२. ऋग्वेद संहिता, वैदिक-संशोधन मण्डलेन प्रकाशिता, श्रीमत्सायणाचार्यविरचितभाष्यसमेत (१-१० मण्डलात्मका) द्वितीय संस्करण, १८९७

३. अथर्ववेदः, विश्वबन्धुना संपादितः, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थानाम्, होंशियारपुरम्, प्रथमसंस्करण, १९६१

४. अथर्ववेदः (हिन्दी भाष्य) महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली, पुनर्मुद्रित, २०१०

५. यजुर्वेद- (हिन्दी भाष्य) महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत्, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नईदिल्ली, पुनर्मुद्रित, २०१०

६. सुश्रुत संहिता, (महर्षि सुश्रुतेन विरचिता।), आयुर्वेदतत्वसन्दीपिका हिन्दीव्याख्या- वैज्ञानिक विमर्श टिप्पणी संहिता- प्रथम भाग- पूर्वाद्ध, व्याख्याकारः डॉ. अम्बिकादत्तशास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, पुनर्मुद्रण, वि.सं.-२०६६

७. चरकसंहिता, आयुर्वेददीपिका की 'आयुषी' हिन्दी व्याख्या विभूषिता, वैद्य हरिश्चन्द्रसिंहकुशवाहा, चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी, प्रथम संस्करण, २००९।

८. यास्कमुनिप्रणीतं निरुक्तम् (निघण्टु सहितम्), संपादकः पंडित सीताराम शास्त्री, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, चतुर्थ संस्करण, २००९

९. भावप्रकाशः, (निघण्टु युक्त) 'विद्योतिनी'-नामकिया भाषा टीकया संवलितः, व्याख्याकारः भिषग्रत्न श्री ब्रह्मशङ्कर मिश्र, विवरणकारः श्री रूपलाल वैश्यः, चौखम्भा संस्कृत भवन, एकादशः संस्करण, वि.स. २०६७।

१०. Vedic Plants, G.P. Majumdar, B.C. Law, Vol-1, Indian Research Institute, Calcutta, 1945.

११. Economy of Plants in The Vedas, Rajiv Kamal, Commonwelth Publishers, New Delhi, First Edition, 1988.

१२. वेदों में आयुर्वेद, वैद्य पं. रामगोपाल शास्त्री, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, २००३

१३. નિઘંટુ, બાપાલાલ ગ. વૈદ્ય, ગુજરાત પુસ્તકાલય સહાયક સહકારી મંડળ લિ., વડોદરા, પુનઃ મુદ્રણઃ ૧૯૯૯, નવિન સંસ્કરણ, જાન્યુ-૨૦૧૧.